भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 21 अंक 2 दिसम्बर 2013 पृ. 128-134

बदलते परिवेश में संसाधन-उपयोग दक्षता एवं उत्पादकता बढ़ाने हेतु संरक्षण खेती की भूमिका

वीरेन्द्र कुमार
सस्यविज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

सारांश : आजकल पूरे विश्व में संरक्षण खेती पर बड़ा जोर दिया जा रहा है। पिछले कई दशकों से सघन खेती के अंतर्गत एक वर्ष में 2-3 फसलें उगायी जा रही हैं। लगातार एक ही तरह की फसलें उगाने से रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक व अनुचित प्रयोग करने व जैविक खादों के प्रयोग की अनदेखी करने के कारण कृषि में ज्यादा उत्पादन लागत और कम फायदा हो रहा है। संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता में कमी होने से आज विश्व के कई देशों में संरक्षण खेती बड़े व्यापक स्तर पर अपनाई जा रही है। विश्व में लगभग 100 मिलियन हैक्टेयर से ज्यादा जमीन पर संरक्षण खेती की जा रही है। संरक्षण खेती करने वाले देशों में अमरीका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, ब्राज़ील और अर्जेन्टीना प्रमुख हैं। इस विधि का मुख्य उद्देश्य यह है कि खेत की मिट्टी को न्यूनतम हिलाया जाए, उसकी जुताई न के बराबर की जाए, भारी मशीनों का कम से कम प्रयोग किया जाए व मृदा सतह को हर समय फसल अवशेषों या दूसरे किसी वनस्पति आवरणों से ढ़ककर रखा जाए। हरी खाद या जमीन को ढ़कने वाली अन्य फसलों को फसल-चक्र में अपनाया जाए। ऐसा करने से बहुत सारे फायदे पाये गये हैं जिनमें फसलों की पैदावार बढ़ने के साथ-साथ संसाधनों जैसे मिट्टी, पानी, पोषक तत्व, फसल उत्पाद और वातावरण की गुणवत्ता भी बढ़ी है जो कि कृषि की लगातार अच्छी हालत के लिए बहुत जरूरी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भविष्य में इसी तरह की खेती को ही अपनाना होगा ताकि हमारी भावी पीढ़ियां अच्छे से अपना जीवन निर्वाह कर सकें।

Role of conservation agriculture in enhancing productivity and resource use efficiency in changing scenario

Virendra Kumar
Division of Agronomy, Indian Agricultural Research Institute, New Delhi 110012

Abstract

Energy crisis, special economic zones, global warming and increasing cost of agricultural inputs are the main problems that the farmers have been facing today.These problems create many other problems. Further, there has been an indiscriminate, imbalanced and excessive use of resources during the last four decades, for cultivation of crops. Consequently, the quality and quantity of our resources are adversely affected and several problems are arising in crop production, i.e. decreasing yield of crops, reducing the quality of farm produce, deficiency of plant nutrient in soil, decrease in ground water level, presence of toxic substances in soil, water, air and shortage of nutritious farm products etc. In addition to above, increasing cost of cultivation and lesser returns in agriculture is the matter of concern. Keeping in view the above problems in crop production, there is a great need of resource conservation techniques for sustainable crop production by maintaining the quality of our resources so that we can fulfill the requirement of present generation and provide better environment for future generations also. During the last one and half decade several conservation techniques like zero tillage, sowing on raising beds, crop diversification, laser levelling and SRI technique of rice growing developed.These techniques not only improve the crop production but also increase the quality of our resources. Conservation agriculture also plays an important role in reducing the cost of cultivation and conservation of natural resources, particularly soil and water. In modern agriculture more emphasis is given on conservation tillage in which major portion of crop residues is left on soil surface.This not only improves the crop productivity but also increases the resource use efficiency. Nowadays conservation tillage is becoming popular in rice-wheat cropping system. Several researches have revealed that repeated ploughing of fields is neither profitable nor provides additional increase in yield of crops. However, the farmer gets lesser returns while applying heavy investment on ploughing. Therefore, there is a great need to popularize these techniques among farming community so that the use of these conserved techniques lead better crop production and agriculture may become more profitable.

प्रस्तावना

आज किसानों को ऊर्जा संकट, विशेष आर्थिक क्षेत्र, कृषि मदों की बढ़ती कीमतों और ग्लोबल वार्मिंग जैसी गम्भीर समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। ये समस्याएं स्वतः ही विभिन्न समस्याओं को जन्म देती हैं। पिछले चार दशकों में उत्पादन बढ़ाने के लिए खेती में संसाधनों का अत्यधिक और अनुचित प्रयोग किया गया जिसके परिणामस्वरूप हमारे संसाधनों की गुणवत्ता और मात्रा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इन सबके चलते आज कई तरह की समस्याएं हमारी खेती में आ गयी हैं जिसमें फसलों की पैदावार और गुणवत्ता में गिरावट, मृदा में पोषक तत्वों की कमी, भूजल स्तर में निरंतर गिरावट, मिट्टी, जल और वायु में कई तरह के विषैले पदार्थों की उपस्थिति, दालों व अन्य पोषकदारी उत्पादों की कमी हो रही है प्रमुख हैं। इसके अलावा खेती में बढ़ती उत्पादन लागत और किसानों की घटती आय चिंता का विषय बना हुआ है। फसल उत्पादन में आ रही उपर्युक्त समस्याओं को ध्यान में रखकर हमें ऐसी संसाधन-संरक्षण संबंधी तकनीकी के बारे में सोचना है जिससे अच्छी फसल पैदावार का स्तर बने रहने के साथ-साथ संसाधनों की गुणवत्ता भी बनी रहे ताकि वर्तमान पीढ़ी की जरूरतों को पूरा करने के साथ-साथ भावी पीढ़ियों के लिए भी अपने से अच्छा वातावरण सुनिश्चित किया जा सके। पिछले लगभग एक-ड़ेढ दशक में संरक्षण खेती से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण तकनीकें जैसे : शून्य जुताई की खेती, मेंडों पर खेती, लेजर विधि द्वारा भूमि का समतलीकरण, फसल प्रणालियों में बदलाव एवं धान की एस.आर. आई. तकनीक विकसित की है। संरक्षण खेती से फसल उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ हमारे संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता में सुधार होता है। संरक्षण खेती की तकनीकों का फसल उत्पादन में लागत कम करने और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। आधुनिक खेती में संरक्षित टिलेज पर जोर दिया जा रहा है जिसमें फसल अवशेषों का अधिकांश भाग मृदा सतह पर छोड़ दिया जाता है जिससे न केवल फसल उत्पादकता में सुधार होता है बल्कि फसल प्रणाली में संसाधन उपयोग दक्षता भी बढ़ती है। धान-गेहूँ फसल प्रणाली में जीरो टिलेज तकनीक काफी लोकप्रिय हो रही है। अनुसंधानों द्वारा ज्ञात हुआ है कि खेत की बार-बार जुताई करने से कोई विशेष लाभ नहीं होता और न ही फसल की पैदावार में कोई अतिरिक्त वृद्धि होती है बल्कि अच्छी खासी लागत लगाने के बावजूद किसान को कम आर्थिक लाभ प्राप्त होता है[7]। अतः इन तकनीकों को किसानों में और अधिक लोकप्रिय बनाने की जरूरत है ताकि संरक्षणपूर्ण प्रौद्योगिकियों के प्रयोग से खेती अधिक लाभप्रद हो सके।

संरक्षण खेती से संबंधित महत्वपूर्ण तकनीकें

पिछले लगभग एक-डेढ़ दशक से हमारे देश के कृषि वैज्ञानिकों का ध्यान संसाधन-संरक्षण संबंधी तकनीक विकसित करने की तरफ गया है। इसमें हमने काफी हद तक कामयाबी भी हासिल की है। हमने ऐसी कई तकनीकें विकसित की हैं जिससे फसल उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ हमारे संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता में सुधार होता है। साथ ही खेती में उत्पादन लागत घटने से किसान की आय भी बढ़ती है। प्रस्तुत लेख में संरक्षण खेती से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण तकनीकों का उल्लेख किया गया है।

शून्य जुताई की खेती

इस तकनीक द्वारा खेतों की बिना जुताई किये एक विशेष प्रकार की सीड ड्रिल द्वारा फसलों की बुवाई की जाती है। जहां बीज की बुवाई करनी हो, उसी जगह से मिट्टी को न्यूनतम खोदा जाता है। इसमें दो लाइनों के बीच की जगह बिना जुती ही रहती है। बुवाई के समय ही आवश्यक उर्वरकों की मात्रा बीज के नीचे डाल दी जाती है। इस तरह की बुवाई मुख्यतः रबी फसलों जैसे गेहूँ, चना, सरसों और अलसी में ज्यादा कामयाब सिद्ध हुई है। इन फसलों की बुवाई देरी की अवस्था में 7-10 दिन पहले यानि की समयानुसार की जा सकती है। अतः इस तकनीक द्वारा बुवाई करने पर देरी से बोयी गयी फसलों में होने वाले नुकसान को बचाया जा सकता है। आई.ए.आर.आई. के अनुसंधान फार्म पर किये गये प्रयोगों में बिना जुताई के बोयी गयी फसलों की पैदावार 5-10% अधिक आँकी गई है[1]। साथ ही बिना जुताई द्वारा बुआई करने में लागत कम आती है क्योंकि आम किसान बुवाई के पूर्व खेत की 3-4 बार जुताई करते हैं जिसके कारण होने वाला खर्चा बच जाता है। साथ ही ट्रैक्टर के रख-रखाव पर भी कम लागत आती है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि रबी की फसलों की बुवाई में 2500-3000 रुपये प्रति हैक्टेयर का खर्चा बचाया जा सकता है। इस तकनीक से बुवाई करने पर पानी की मात्रा भी कम लगती है क्योंकि पलेवा यानि बुवाई-पूर्व सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती है। इसके अलावा बाद में भी 1-2 सेमी. प्रति सिंचाई पानी कम लगता है। यह भी अवलोकन किया गया है कि बिना जुताई वाले खेतों में खरपतवारों का कम प्रकोप होता है। इसका कारण यह है कि इस तकनीक में मिट्टी की ज्यादा उलट-पुलट नहीं करते हैं । अतः जिन खरपतवारों के बीज मिट्टी की गहरी सतह में होते हैं उन्हें अंकुरण के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं मिल पाता है[8]। इसी प्रकार मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ और उसके ऊपर निर्भर लाभकारी सूक्ष्म जीव जन्तुओं की क्रियाशीलता पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है जो कि परंपरागत बुआई के तरीके में खेतों की बार-बार जुताई करने पर नष्ट हो जाते हैं। इस तरह मृदा की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने में भी यह तकनीक सार्थक मानी गयी है।

इस तकनीक में जहाँ एक ओर खेत तैयार करने में लगे समय, धन और ईंधन की बचत होती है तो वहीं दूसरी तरफ यह पर्यावरण

सारणी 1 — धान-गेहूँ फसल-चक्र में संरक्षण खेती की तकनीकों का प्रभाव

तकनीक	धान की पैदावार (टन/है.)	गेहूँ की पैदावार (टन/है.)	गेहूँ के तुल्याँक दोनों फसलों की पैदावार (टन/है.)	शुद्ध लाभ (रु/है. हजार में)	पानी की उत्पादकता (किग्रा.धान/ है. मिमी.)
सीधी बुवाई-शून्य जुताई+धान फसल अवशेष	5.15	4.80	13.97	97.5	6.12
सीधी बुवाई-शून्य जुताई+धान फसल अवशेष-मूँग	5.45	4.95	16.50	111.2	6.35
रोपाई-शून्य जुताई द्वारा बुवाई	5.55	4.88	14.76	100.1	3.75
रोपाई-सामान्य बुवाई	5.58	5.07	15.00	102.1	3.65

स्रोत-शर्मा व अन्य (2012).

हितैषी भी है। क्योंकि इस तकनीक से कार्बन डाइऑक्साइड का 135 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से उत्सर्जन कम किया जा सकता है। यह मानते हुए कि एक लीटर डीजल के जलने से 2.6 किग्रा. कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन होता है जो ग्लोबल वार्मिंग का प्रमुख कारण है[9]। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में सरंक्षण खेती की तकनीक पर बड़े पैमाने पर प्रयोग किये गये हैं। यह प्रयोग मुख्यतः धान-गेहूँ, मक्का-गेहूँ, कपास-गेहूँ, अरहर-गेहूँ व सोयाबीन-गेहूँ फसल-चक्रों में किये गये हैं। इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि धान की सीधी बुआई वाली फसल की कटाई-उपरांत यदि गेहूँ की बुआई शून्य जुताई तकनीक द्वारा की जाती है तथा गेहूँ की कटाई के तुरंत बाद गर्मियों में मूँग की फसल ली जाती है तो सभी फसलों की पैदावार और शुद्ध लाभ परंपरागत विधि से धान-गेहूँ के फसल-चक्र की अपेक्षा अधिक प्राप्त किया जा सकता है[8]। इसके अतिरिक्त सीधी-बुवाई द्वारा धान उगाने से 30-40% सिंचाई जल की बचत की जा सकती है (सारणी 1)। इस तकनीक का फसलों की पैदावार पर भी कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। अनुसंधानों द्वारा यह भी पाया गया है कि जीरो टिलेज विधि से गेहूँ की बुवाई करने पर दीमक का प्रकोप कम होता है क्योंकि पहली फसल के अवशेष दीमक के लिए भोजन सामग्री का काम करते हैं। अतः दीमक गेहूँ की फसल पर आक्रमण नहीं करती है। साथ ही धान के फसल अवशेष को जलाने के बजाय मल्च के रूप में प्रयोग करने से मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ती है।

बिना जुताई वाली खेती में कुछ सावधानियाँ और मुश्किलें भी हैं। एक तो बुवाई के समय मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए ताकि मिट्टी और बीज का संपर्क अच्छी तरह हो जाए। दूसरे बुआई के समय ज्यादा सावधानी रखने की जरूरत होती है कि कहीं सीड ड्रिल की पाइपें बंद न हो जाएं। यद्यपि सीड ड्रिल की पाइपें पारदर्शी होती हैं उनसे बीज गिरता हुआ स्पष्ट नजर आता है। इस तकनीक द्वारा बुआई करने पर लगभग 20-25% ज्यादा मात्रा में बीज और उर्वरक डालना आवश्यक माना गया है क्योंकि कभी-कभी किसी कारणवश प्रति इकाई क्षेत्र पौधों की कम संख्या व बढ़वार की वजह से पैदावार कम न हो[7]। खरपतवारों के नियंत्रण में भी ज्यादा सावधानी की जरूरत होती है। इसके लिए बुआई से पहले पेराक्वाट अथवा ग्लाईफोसेट नामक खरपतवारनाशी का प्रयोग करना चाहिए जिससे पहले से उगे हुए सारे खरपतवार नष्ट हो जाएं। कुछ भारी जमीनों में पौधों की जड़ों की वृद्धि कम हो सकती है। इसके लिए मिट्टी पर फसल अवशेषों या अन्य वनस्पति पदार्थों की परत डालने से पौधों की जड़ों और विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

मेड़ों पर खेती

इस तकनीक में फसलों की बुआई मेड़ों पर करने के लिए एक यन्त्र तैयार किया गया है। इस तकनीक में 70-75 सेमी. की दूरी पर मेड़ें बनाई जाती हैं। जिसमें लगभग 35 सेमी. चौड़ी मेंड़ और इतनी ही दूरी व गहराई पर नाली सी बन जाती है। बुवाई मेड़ों पर और नाली में भी फसल के अनुसार की जा सकती है। गेहूँ के लिए मेड़ों पर 3 लाइनें बो सकते हैं जबकि सोयाबीन, सरसों, चना, मूँग की दो लाइन काफी होती हैं। यह तकनीक खेतों की भली-भाँति जुताई करने के बाद या फिर पिछली फसल के लिए बनायी गई मेड़ों पर बिना जुताई के भी अपनाई जा सकती है।

इस विधि से बुवाई करने के कई लाभ हैं। जैसे वर्षा ऋतु में खेतों में ज्यादा पानी खड़ा होने से मेड़ों पर उगे पौधे ज्यादा सुरक्षित होते हैं क्योंकि अनावश्यक पानी को नालियों में से होकर बाहर निकाला जा सकता है। फसलों की सिंचाई करने पर पानी की मात्रा 20-30% तक कम लगती है। साथ ही प्रति यूनिट पानी की उत्पादकता भी बढ़ती है। इस तकनीक द्वारा फसल उत्पादन में यह भी देखा गया है कि बीज और खाद की मात्रा 15-20% कम लगती है क्योंकि इनका प्रयोग

सिर्फ मेड़ों पर ही किया जाता है[1]। इस विधि में मेड़ों पर खरपतवार भी कम आते हैं। इसका कारण यह है कि मेड़ों पर फसल के पौधों की संख्या ज्यादा होती है जिससे खरपतवारों को पनपने का मौका नहीं मिलता है। यद्यपि नालियों में ज्यादा खरपतवार आते हैं क्योंकि फसल की आरंभिक अवस्थाओं में उनके उगने के लिए पर्याप्त जगह होती है। खरपतवारों की रोकथाम हाथ से चलाने वाले अथवा ट्रैक्टर चालित यंत्रों द्वारा आसानी से की जा सकती है। इस प्रकार मेड़ों पर बुआई करने से संसाधनों का कम प्रयोग होने के साथ-साथ पैदावार भी 10-15% ज्यादा या फिर समतल जमीन पर बुआई करने के बराबर ही मिलती है।

कपास-गेहूँ फसल-चक्र में शून्य जुताई और मेड़ों पर बुआई बहुत सार्थक पायी गयी है। यदि फसलों के अवशेषों को भी मिट्टी की सतह पर बिछा दिया जाए तो यह तकनीक और भी ज्यादा लाभकारी सिद्ध हुई है जिसका मृदा नमी, कार्बनिक कार्बन की मात्रा व तापमान पर तो अनुकूल प्रभाव पड़ता ही है साथ ही खरपतवारों की रोकथाम में भी सहायता मिलती है। संरक्षण खेती की तकनीकियों द्वारा फसलों की उपज और शुद्ध लाभ में भी बढ़ोत्तरी आंकी गयी है। इसके अलावा सिंचाई जल की उत्पादक-दक्षता में भी सुधार पाया गया (सारणी 2)।

मेड़ों पर बुआई करने के लिए कुछ बातों का विशेष ध्यान रखना जरूरी होता है। इसके लिए खेत पूरी तरह से समतल होना चाहिए। अगर अच्छी जुताई के बाद मेड़ों पर बुआई करनी हो तो मिट्टी पूरी तरह से भुरभुरी होनी चाहिए। खेत ढेले वगेरा से पूर्णतया मुक्त होना चाहिए। यदि पिछली फसल के लिए बनायी गयी मेड़ों पर बिना जुताई के बुवाई करनी हो तो खेत घास-फूस व फसल अवशेषों से रहित होना चाहिए। मेड़ों पर बुआई करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मृदा में सही नमी होनी चाहिए अन्यथा नमी की कमी में बीजों का जमाव ठीक से नहीं हो पाता है। वाष्पीकरण होने से भी मेड़ों की सतह पर नमी कम रह जाती है ऐसी स्थिति में गेहूँ जैसी फसल में तो बुआई के 4-5 दिन बाद ही सिंचाई की जरूरत पड़ सकती है[1]।

लेजर विधि द्वारा मिट्टी का समतलीकरण

संसाधन संरक्षण संबंधी तकनीकी जैसे कि बिना जुताई की खेती या मेड़ों पर बुआई के लिए सबसे जरूरी बात यह है कि खेत पूरी तरह से समतल होना चाहिए अन्यथा बुआई ठीक से नहीं हो पाती है। बीज मिट्टी में सही गहराई पर नहीं पहुंचने से बीजों का अंकुरण एक समान रूप से नहीं हो पाता है। खाद व पानी भी सभी पौधों को समान रूप से उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। वास्तव में किसी संसाधन संरक्षण संबंधी तकनीक की सफलता खेत के समतल होने पर निर्भर करती है। लेजर विधि एक नई वैज्ञानिक तकनीक है जिसमें एक विशेष उपकरण द्वारा खेत की मिट्टी को पूरी तरह समतल किया जाता है। समतल भूमि पर फसल उगाने का सबसे बड़ा फायदा पानी की बचत व अधिक फसल उत्पादकता का है। सिंचाई का पानी खेत के हर हिस्से में एक समान मात्रा में और सारे खेत में कम समय में फैल जाता है। धान की फसल के लिए तो यह बहुत ही उपयोगी है जिसमें सिंचाई जल की मात्रा लगभग आधी हो जाती है। आजकल किसानों द्वारा इस तकनीक में बहुत ज्यादा रुचि दिखायी जा रही है। इस मशीन की लोकप्रियता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। किसानों के बीच यह मशीन 'कम्पयूटर' के नाम से प्रचलित है। ये मशीनें काफी मंहगी हैं परंतु छोटे व सीमांत किसानों की जरूरतों को पूरा करने के लिए ये आसानी से किराये पर उपलब्ध हो जाती हैं।

दूसरी हरित क्रान्ति बेहतर भूमि व जल प्रबंधन से आयेगी। भूमि प्रबंधन का आधार खेतों की समतलता है। किसान भाइयों ने खेतों की समतलता के महत्व को समझा और खेतों को समतल करने की कई पारम्परिक विधियों को अपनाया जिससे कुछ लाभ प्राप्त हुए। परन्तु इन पारम्परिक विधियों से खेत पूर्णतया समतल नहीं हो पाता है। जिससे खेतों में सिंचाई जल, उर्वरक व अन्य कृषि रसायनों का असमान वितरण होता है और अन्ततः खेतों में खड़ी फसलों को हानि पहुँचती है। आधुनिक कृषि यन्त्र लेजर लेवलर के उपयोग से खेत को

सारणी 2 — कपास-गेहूँ फसल-चक्र में संरक्षण खेती की तकनीकों का प्रभाव

तकनीक	कपास की उपज (टन/है.)	गेहूँ की उपज (टन/है.)	दोनों फसलों की गेहूँ तुल्य उपज (टन/है.)	शुद्ध लाभ (रु./है.) (हजार में)	सिंचाई जल की उत्पादकता (कि.ग्रा./है.)
सामान्य बुआई-समतल भूमि	2.44	4.85	10.29	92.8	9.0
शुन्य जुताई-मेड़ों पर	2.71	4.55	10.60	96.3	11.6
शुन्य जुताई-मेड़ों पर + फसल अवशेष	2.96	4.61	11.23	102.2	12.9

स्रोत-शर्मा व अन्य (2012).

पूर्णतया समतल किया जा सकता है। पूर्ण समतल खेत की सिंचाई में पानी कम लगता है क्योंकि खेत समतल होने के कारण जल्दी ही सम्पूर्ण सतह पर फैल जाता है[8]।

फसल विविधीकरण

खेती में लगातार एक ही प्रकार की फसलें उगाने व एक ही तरह के आदानों का प्रयोग करने से न केवल फसलों की पैदावार में कमी आयी बल्कि उनकी गुणवत्ता में भी गिरावट दर्ज की गयी। एक फसल प्रणाली न तो आर्थिक दृष्टि से लाभदायक है, और न ही पारिस्थितिक दृष्टि से अधिक उपयोगी है। अतः फार्म पर धान्य फसलों के साथ दलहन फसलें, बागवानी फसलें, पशुपालन, मछली पालन व मधुमक्खी पालन को अपनाया गया जिससे यदि किसी वर्ष मुख्य फसल नष्ट हो जाये तो अन्य कृषि व्यवसाय किसानों की आमदनी का स्रोत बन जाते हैं। साथ ही फसल विविधीकरण में प्राकृतिक संसाधनों का भी उचित उपयोग होता है। इसके अलावा किसान माँग और आपूर्ति में होने वाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मूल्यों में उतार-चढ़ाव से कम प्रभावित होते हैं। फसल विविधता से खेत में जैविक समृद्धि भी लायी जा सकती है। इस प्रकार कृषि विविधीकरण को अपनाकर खेती को टिकाऊ बनाया जा सकता है। खरीफ में उगायी जाने वाली अधिकांश फसलें एवं उनकी प्रजातियां कम अवधि की होती हैं। साथ ही ये फसलें प्रकाश की अवधि के प्रति असंवेदनशील होती हैं। अतः ये कम अवधि वाली फसलें फसल प्रणालियों की फसल सघनता व लाभ बढ़ाने में सहायक होती हैं। ये फसलें प्राकृतिक रूप से कठोर प्रकृति की होती हैं। अतः वातावरण की विपरीत परिस्थितियों में भी ये फसल प्रणाली में स्थायित्व प्रदान करने की क्षमता रखती हैं। अतः फसल विविधीकरण की तकनीकी और कार्य प्रणाली को किसानों तक पहुंचाकर देश में खाद्यान्न उत्पादन और संसाधनों की मात्रा व उनकी गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है। लघु व सीमान्त किसानों के लिए बरानी क्षेत्रों में जोखिम कम कर अधिक आय लेने के लिए फसल विविधीकरण एक आवश्यक घटक भी है।

संरक्षण खेती के अंतर्गत कपास-गेहूँ फसल चक्र में अरहर-गेहूँ और मक्का-गेहूँ फसल चक्रों की अपेक्षा लगभग 1.0 -1.5 गुणा ज्यादा उत्पादकता मिलती है। फसल अवशेषों के साथ मेंड़ पर बुवाई करना समतल बुवाई की अपेक्षा बेहतर होता है। साथ ही उपर्युक्त तीनों फसल प्रणालियों के अंतर्गत फसल अवशेषों के साथ मेंड़ों पर बुवाई करने से अधिक फसल उत्पादकता मिलती है (सारणी 3)।

सारणी 3 — विभिन्न फसल प्रणालियों में शून्य जुताई के अंतर्गत गेहूँ के तुल्याँक प्रणाली उत्पादकता

उपचार	कपास-गेहूँ (टन/है.)	अरहर-गेहूँ (टन/है.)	मक्का-गेहूँ (टन/है.)
परम्परागत समतल बुवाई	11.29	8.81	8.22
शून्य जुताई संकरी मेंड़	11.60	9.10	8.00
शून्य जुताई संकरी मेंड़ + फसल अवशेष	12.23	9.28	8.26
शून्य जुताई चौड़ी मेंड़	12.81	9.35	8.71
शून्य जुताई चौड़ी मेंड़ + फसल अवशेष	12.16	10.35	8.78

स्रोत-शर्मा व अन्य (2012).

सारणी 4 — सिंचित दशाओं में विभिन्न फसल प्रणालियों के अंतर्गत गेहूँ तुल्याँक प्रणाली उत्पादकता और शुद्ध लाभ

फसल प्रणाली	गेहूँ तुल्याँक प्रणाली उत्पादकता (टन/है.)	शुद्ध लाभ (रु/है.) (हजार में)
मक्का-गेहूँ (शून्य जुताई चौड़ी मेंड़) +फसल अवशेष	8.78	61.5
अरहर-गेहूँ (शून्य जुताई चौड़ी मेंड़) + फसल अवशेष	10.55	73.8
कपास-गेहूँ (शून्य जुताई चौड़ी मेंड) +फसल अवशेष	13.16	95.3
धान की सीधी बुवाई-शून्य जुताई-गेहूँ	13.75	100.1
रोपाई धान-गेहूँ की परंपरागत बुवाई	14.00	102.2

स्रोत-शर्मा व अन्य (2012).

सारणी 5 — विभिन्न शून्य जुताई फसल प्रणालियों में सिंचाई जल की उत्पादकता

फसल प्रणाली	कुल दिया गया सिंचाई जल (है.मिमी.)		सिंचाई जल उत्पादकता(कि.ग्रा./है.मिमी.)	
	खरीफ	रबी	खरीफ	रबी
मक्का-गेहूँ				
शून्य जुताई व मेंड़ों पर बुवाई	150	250	22.67	20.40
समतल बुवाई	210	350	12.57	14.69
अरहर-गेहूँ				
शून्य जुताई व मेंडों पर बुवाई	350	250	15.00	19.72
सामान्य बुवाई	490	350	7.67	13.89
कपास-गेहूँ				
शून्य जुताई व मेंडों पर बुवाई	550	250	16.93	19.40
सामान्य बुवाई	770	350	9.00	13.86

स्रोत-शर्मा व अन्य (2012).

कपास-गेहूँ फसल प्रणाली धान-गेहूँ प्रणाली की तरह तुलनीय उत्पादकता और शुद्ध लाभ उपलब्ध कराती है। यह धान-गेहूँ फसल प्रणाली का विकल्प हो सकती है (सारणी 4)।

मक्का-गेहूँ ,अरहर-गेहूँ और कपास-गेहूँ फसल प्रणालियों में शून्य जुताई द्वारा बुआई के अंतर्गत कम सिंचाई जल की आवश्यकता होती है जिसके परिणामस्वरूप समतल बुवाई की अपेक्षा अधिक सिंचाई जल उत्पादकता मिलती है (सारणी 5)।

एस.आर.आई. तकनीक का प्रयोग

धान की खेती में सिस्टम ऑफ राइस इन्टेन्सीफिकेशन (एस.आर. आई.) तकनीक को अपनाने से प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक उत्पादन के साथ मृदा, समय, श्रम और अन्य साधनों का अधिक दक्षतापूर्ण उपयोग होना पाया गया है। एस.आर.आई तकनीक के पांच प्रमुख घटक हैं। धान के 10-12 दिन के नवजात पौधों का रोपण, एक स्थान पर केवल एक ही पौधे की रोपाई, अधिक दूरी पर वर्गाकार पौध रोपण, सीमित सिंचाई कर पानी की बचत, बार-बार खेत में खरपतवार नियंत्रण हेतु कृषि क्रियाओं द्वारा वायु के अधिक से अधिक आवागमन को बरकरार रखना तथा अधिक से अधिक जैविक खादों का प्रयोग करना। इस विधि में पौधों की रोपाई के बाद मिट्टी को केवल नम रखा जाता है। खेत में पानी खड़ा हुआ नहीं रखते हैं। जल निकास की उचित व्यवस्था की जाती है जिससे पौधों की वृद्धि और विकास के समय मृदा केवल नम बनी रहे। इस प्रकार धान के खेतों में मृदा वायुवीय दशाओं में रहती है, और मृदा में डीनाइट्रीफिकेशन की क्रिया द्वारा दिये गये नाइट्रोजन उर्वरकों का कम से कम ह्रास होता है। साथ ही धान के खेतों से नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन भी नगण्य होता है[6]। एस.आर.आई. विधि से धान की खेती करने पर लगभग 30-50% सिंचाई जल की बचत भी होती है। इस विधि का महत्वपूर्ण पहलू पर्यावरण सुधार है। प्राकृतिक संसाधनों का बेहतर प्रयोग और अन्य आदानों जैसे - उर्वरक व कीटनाशकों का कम प्रयोग होने से यह विधि पर्यावरण हितैषी भी है[10]। क्योंकि इस विधि में खेतों में पानी खड़ा नहीं होता जिससे उनमें मीथेन व नाइट्रस ऑक्साइड गैसों का निर्माण नहीं होता है तथा भूमि जैवविविधता भी बढ़ती है। साथ ही दिये गये नाइट्रोजन उर्वरकों का लींचिंग द्वारा नाइट्रेट के रूप में कम से कम ह्रास होता है[11]। अतः इस विधि को किसानों में लोकप्रिय बनाने के लिए अत्यधिक प्रचार-प्रसार की जरूरत है।

कम पानी से एरोबिक धान उगाने की विधि

जल एक सीमित संसाधन है। देश में कृषि हेतु उपलब्ध कुल जल का लगभग 50% भाग धान उगाने हेतु प्रयोग में लाया जाता है। हमारे देश में धान की खेती लगभग 44.0 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल में की जाती है[4]। भारत की आधी से अधिक आबादी के लिए धान न केवल जीवन का पोषक है बल्कि पौष्टिकता का मुख्य आधार भी है। धान उत्पादन की इस विधि में धान के बीजों को खेत में तैयार कर सीधे ही खेत में बो दिया जाता है। इससे पानी की असीम बचत होती है। चूंकि इस विधि के अन्तर्गत खेतों में पानी नहीं भरते हैं। इसलिए धान के खेतों में वायुवीय वातावरण बना रहता है जिसके परिणामस्परूप विनाइट्रीकरण की क्रिया द्वारा नाइट्रोजन के ह्रास को रोका जा सकता है[5]। साथ ही इस विधि में धान के खेतों से ग्रीन हाऊस गैसों का निर्माण नगण्य के बराबर होता है। जलमग्न धान की फसल में दिये गये नाइट्रोजन उर्वरकों का नुकसान मुख्य रूप से अमोनिया वाष्पीकरण, विनाइट्रीकरण व लीचिंग द्वारा होता है। जो अन्ततः हमारे पर्यावरण को प्रदूषित भी करते हैं। धान उगाने की एरोबिक विधि में उपयुक्त सभी

समस्याओं से छुटकारा पाया जा सकता है। इस विधि के उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण में भी कमी लाई जा सकती है। दूसरी तरफ धान की फसल में नाइट्रोजन उपयोग दक्षता एवं उत्पादकता में भी वृद्धि की जा सकती है। अतः भारत के कम पानी वाले क्षेत्रों में इस तकनीक को उपयोगी बनाने की नितान्त आवश्यकता है जिससे हमारे प्राकृतिक संसाधनों का जरूरत से ज्यादा दोहन न हो[3]।

सन्दर्भ

1. शर्मा अजीत राम, दास तापस कुमार एवं कुमार वीरेन्द्र, उत्पादकता और संसाधन उपयोग दक्षता बढ़ाने हेतु संरक्षण खेती, आई.ए.आर.आई. फोल्डर, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली (2012) 1-8.
2. आई.पी.सी.सी., समरी रिपोर्ट ऑफ द वर्किंग ग्रुप ऑफ आई.पी.सी.सी. पेरिस, फरवरी (2007).
3. सिंह अनिल कुमार एवं दुबे श्रवण कुमार, कम पानी से एरोबिक धान उगाने की विधि, प्रसार दूत, कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, **10**(1) (2006) 16-18.
4. एग्रीकल्चरल स्टैटिस्टिक्स एक दृष्टि में, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, भारत (2012).
5. गुप्ता आर के, होब्स पी आर, लाधा जे के एवं प्रभाकर एस वी आर के, संसाधन संरक्षण तकनीकी, इंडो-गेंगेटिक प्लेंस में धान-गेहूँ फसल पद्धति-एक सफल स्टोरी, एशिया पेसिफिक एसोसिशयन ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च इन्स्टीट्यूट्स, बैकांक, थाइलैंड, (2003).
6. चन्द्रशेखर जी, इमिशन-ए हॉट इश्यू, 27 जनवरी 2008, बिजनेस लाइन, नई दिल्ली, भारत (2008).
7. छोकर राजेन्द्र सिंह, शर्मा रमेश कुमार, चन्द्र रमेश एवं जगशोरण ए के, जीरो टिलेज अपनाओ, खेत की जुताई से मुक्ति पाओ, खाद पत्रिका, एफ.ए.आई. नई दिल्ली, भारत **40**(2) (2005) 27-29.
8. कुमार वीरेन्द्र एवं कुमार दिनेश, धान-गेहूँ फसल चक्र के अन्तर्गत जीरो टिलेज तकनीक की उपयोगिता, प्रसार दूत, रबी विशेषांक, कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र, आई.ए.आर.आई., नई दिल्ली **10**(2) (2006) 10-11.
9. मिश्रा बी, जगशोरण, शर्मा ए के एवं गुप्ता आर के, गेहूँ उत्पादन की टिकाऊ और लागत प्रभावी तकनीक, गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल, टेक्नीकल बुलेटिन नं. 8 : **36**, हरियाणा, भारत (2005).
10. अध्या तपन कुमार एवं शर्मा गोपाल, बेहतर पर्यावरण के लिए धान की खेती, बेहतर पर्यावरण के लिए भारतीय कृषि पर राष्ट्रीय संगोष्ठी, 16-17 दिसम्बर, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, (2008) 72.
11. पाठक हिमांशु एवं प्रसाद राजेन्द्र, भारतीय कृषि में नाइट्रोजन का फेट, एन. ए.ए.एस. बुलेटिन, एन.ए.एस.सी. कम्पलैक्स, नई दिल्ली-12 **8**(2) (2008) 1-4.